



भारतीय शास्त्रीय संगीत रु स्वर, परंपरा और सांस्कृतिक भूमिका

Paras Chopra

Research Scholar, Dr. K.N. Modi University Newai, Rajasthan

Dr. Lalita Singh Chauhan

Assistant Professor (Music), Dr. K. N. Modi University, Newai, Rajasthan

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक परंपराओं, आध्यात्मिक चेतना और सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग भी है। इसकी जड़ें प्राचीन वैदिक यज्ञों के सामगानों में देखी जा सकती हैं, जो समय के साथ विकसित होकर दो प्रमुख परंपराओं—हिंदुस्तानी और कर्नाटकी संगीतकृमों विभाजित हुईं। इन परंपराओं में राग, ताल और भाव की गहन संरचना मिलती है, जो संगीत को श्रवणीय आनंद प्रदान करती है आत्मानुभूति का माध्यम भी बनाती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रभाव धार्मिक अनुष्ठानों, लोक परंपराओं, और यहां तक कि चिकित्सा विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से देखा जाता है। यह संगीत प्रणाली गुरु-शिष्य परंपरा पर आधारित होती है, जो ज्ञान और अनुशासन का गहन तालमेल प्रस्तुत करती है। आधुनिक युग में भी, भारतीय शास्त्रीय संगीत ने विश्व स्तर पर अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है, जिससे यह भारतीय सांस्कृतिक कूटनीति का भी एक सशक्त माध्यम बन गया है।

मुख्यशब्द रु भारतीय शास्त्रीय संगीत, राग, ताल, हिंदुस्तानी संगीत, कर्नाटकी संगीत, सांस्कृतिक परंपरा, गुरु-शिष्य परंपरा, आत्मानुभूति, संगीत और समाज, वैश्विक प्रभाव।

परिचय

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गत एक निश्चित, संरचित मधुर वाक्यांश या पैटर्न को संदर्भित करता है, जिसे अक्सर राग के भीतर सुधार के लिए आधार के रूप में उपयोग किया जाता है। सितार वादन के संदर्भ में, गत रचना और प्रदर्शन के अलंकरण दोनों का एक अनिवार्य हिस्सा है। सितार वादन के विभिन्न घरानों (विद्यालयों या परंपराओं) में गतों के गायन के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण हैं, जिनमें से प्रत्येक वाद्य के प्रदर्शनों की सूची की समृद्धि और विविधता में योगदान देता है। तार की उत्पत्ति अमीर खुसरो द्वारा त्रि-तंत्री वीणा के आधार पर १३वीं शताब्दी में हुई थी। चूंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, इस वाद्य यंत्र में भी कई परिवर्तन हुए। सितार तकनीकों का विकास कई दान स्रोतों, बिन, रबाब ध्रुपद अंग, ख्याल अंग और मुखर संगीत और अन्य वाद्ययंत्रों में देखा जा सकता है। इन स्रोतों में से वास्तविक बीन या वीणा प्रतीत होती है। १८वीं और १९वीं शताब्दी के दौरान, सितार तकनीक

काफी हद तक विकसित हुई और राग प्रस्तार की एक अनूठी प्रणाली उत्पन्न हुई जिसे गत शैली के रूप में जाना जाता है।

पहले सितार का उपयोग मुखर संगीत के साथ संगत या अंतराल भरने के लिए किया जाता था फिर बाएं हाथ ने स्वर विस्तार, मींड कार्य, विस्तार, कण-स्वरगमक, घसीट के माध्यम से अपनी क्षमता दिखानी शुरू की और सितार पक्षियों की चहचहाहट, बादलों की गड़गड़ाहट, झरनों की झड़ी और भारतीय संगीत के सभी नौ रसों को दर्शाने की क्षमता रखने वाला एक पूर्ण विकसित वाद्य बन गया। महान उस्तादों की रचनात्मक रचनाओं ने इस वाद्य को भारत के साथ-साथ विदेशों में भी लाखों लोगों के दिलों की धड़कन बना दिया है। रचनाओं में भी व्यापक परिवर्तन हुए हैं। हर उस्ताद अपने स्वाद और अपने नाम से गतें रचता रहा है जैसे अमीर खानी गत, रजा खानी गत, मसीत खानी गत, जफर खानी गत आदि। मसीत खानी, रजा खानी और इमदाद खानी गत सबसे लोकप्रिय, आसान और आकर्षक गतें हैं। स्वर विस्तार और राग विस्तार के लिए दाएं और बाएं हाथ की तकनीकों ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और सितार के उभरते कलाकारों द्वारा प्रयोग किए जा रहे हैं

भारतीय संस्कृति की विभिन्न क्षेत्रों में असाधारण उपलब्धियाँ शास्त्रीय संगीत के उल्लेख के बिना पूर्ण नहीं होतीं। जहाँ तक हिन्दुस्तानी संगीत का सम्बन्ध है, उसका कोई परिचय संगीत के घरानों की विशेषताओं को जाने बिना नहीं जाना जा सकता। आधुनिक संगीत को भली भाँति समझने लिए भी घरानों की विशेषताओं को जानना अनिवार्य है। घरानों की संकल्पना केवल हिन्दुस्तानी संगीत में ही पायी जाती है इसलिए भारतीय संगीत में घरानों का अपना महत्व है। कहा जाता है अकबर से लेकर अब तक का समय हिन्दुस्तानी संगीत का सिरमौर रहा है और यह परम्परा स्वामी हरिदास की ध्रुपद परम्परा और सदारंग व अदारंग की ख्याल परम्परा से चल कर वर्तमान ऊँचाइयों को छू रही है। ऐसा माना जाता है इस गौरवपूर्ण यात्रा में तानसेन का घराना, ग्वालियर घराना, आगरा घराना, सहारनपुर के ध्रुपद गायक बहराम खाँ का घराना, जयपुर घराना, खुरजा घराना, सहसवान का घराना, अतरौली का घराना, मथुरा का घराना, फतेहपुर सीकरी और सिंकदराबाद का घराना तथा लखनऊ के ठुमरी और कथक नृत्य को समर्पित घराने विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ० सुशील कुमार चौबे द्वारा संगीत के घरानों की चर्चा पुस्तक में इन महत्वपूर्ण विषयों पर गम्भीर और विस्तृत चर्चा की गयी है।

संगीत का अर्थ

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत को गायन, वादन एवं नृत्य का समग्र रूप माना है, जो कि शारंगदेव के संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में दिए गए श्लोक से स्पष्ट है

“गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतं मुच्यते”।

वैसे गायन, वादन एवं नृत्य का एक दूसरे से स्वतंत्र अस्तित्व है परन्तु गायन के साथ स्वरवाद्य जैसे सारंगी अथवा वायलिन एवं अवनद्ध वाद्य – तबला अथवा पखावज संगति के रूप में प्रयोग होता है। प्राचीन समय में इन तीनों का प्रदर्शन एक साथ किया जाता था। नृत्य, गायन, स्वर वाद्य वादन एवं

अवनद्ध वाद्य वादन पर आधारित था, परन्तु अब इन तीनों का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित हो चुका है। सामान्यतः संगीत को शास्त्रीय संगीत ही समझा जाता है परन्तु संगीत के अन्तर्गत संगीत की सभी विधाएं – शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत आती है जिनकी चर्चा संगीत की विधायें, के अन्तर्गत की जाएगी।

मनुष्य विचारों और कार्यों की पारस्परिक समझ वाले समाज में रहते हैं, इसलिए उनके पास कुछ ऐसा माध्यम होना चाहिए जिससे वे अपनी भावनाओं को व्यक्त और आदान-प्रदान कर सकें। भाषा की तरह संगीत भी प्राचीन काल से अभिव्यक्ति का स्रोत रहा है। यह वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित हमारे देश और संस्कृति का गौरव है।

संगीत वाद्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर भले ही अस्पष्ट हो, लेकिन प्रश्न में अन्य बातें भी निहित हैं। संगीत क्या है? संगीत की उत्पत्ति क्या है? इसके प्राचीन रूप क्या हैं आदि।

अंग्रेजी शब्द म्यूजिक, फ्रेंच शब्द श्म्यूजश से बना है। लैटिन में इसे श्म्यूजिकश कहते हैं। संस्कृत में इसे शृगण, गीति या संगीतश कहते हैं।

संगीत पर बाद के ग्रंथों में संगीत को स्वर संगीत, ढोल और नृत्य (गीत, नृत्य, वाद्य) के संयोजन के रूप में समझाया गया है या परिभाषित किया गया है।

“गीतम् वाद्यं तथा नृत्यं त्रयम्

संगीतमुच्यते।

गीतं वादित्रे नृत्यम्

त्रयं संगीते मुच्यते

भारतीय संगीत या संगीत में तीन कलाएँ शामिल हैं यानी गायन, वादन, नृत्य। यह नृत्य कला के साथ-साथ गायन और वाद्य संगीत के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक तकनीकी शब्द है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत

भारतीय शास्त्रीय संगीत आधुनिक उत्तर भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल की प्रमुख संगीत परंपरा है। इसका समकक्ष दक्षिण भारत का कर्नाटक शास्त्रीय संगीत है। दोनों में कई सिद्धांत हैं लेकिन उनकी शैली और प्रभाव अलग-अलग हैं। मधुर स्वर और सामंजस्यपूर्ण वाद्यों की विशेषता वाले भारतीय शास्त्रीय संगीत सिद्धांत को अभिव्यक्ति और आध्यात्मिकता की आधारशिला पर बनाया गया है। हिंदुस्तानी परंपरा के केंद्र में राग है, एक सुर के बाद दूसरे सुर की प्रक्रिया एक सुसंगत संगीत अभिव्यक्ति बनाती है। हिंदुस्तानी रचनाएँ राग नामक मधुर ढाँचों की एक श्रृंखला पर आधारित होती हैं और ताल नामक लयबद्ध पैटर्न का पालन करती हैं। हिंदुस्तानी संगीत में इस्तेमाल किए जाने वाले सबसे प्रमुख वाद्ययंत्र सितार, सरोद, तबला, वीणा, बाँसुरी और सारंगी आदि हैं। चूँकि भारतीय शास्त्रीय संगीत मुख्य रूप से गायन प्रदर्शन पर आधारित था, इसलिए कई शास्त्रीय भारतीय वाद्ययंत्रों को मानव

आवाज की नकल करने के लिए डिजाइन किया गया था। हिंदुस्तानी प्रदर्शन आम तौर पर पारंपरिक राग और लय पर आधारित रचना के बाद सुधार की एक श्रृंखला के साथ शुरू होते हैं। प्रदर्शन में आमतौर पर कम से कम एक गायक शामिल होता है, जिसके साथ वाद्य यंत्रों का संगत होता है, जो एक से लेकर कई घंटों तक चलता है। निपुण हिंदुस्तानी संगीतकारों को पंडित कहा जाता है, अगर वे हिंदू हैं और उस्ताद अगर वे मुस्लिम हैं। यह एकमात्र ऐसा समय है जब कोई भेद किया जाता है, क्योंकि हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत ऐतिहासिक रूप से धार्मिक रूप से तटस्थ है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का इतिहास

प्राचीन

प्राचीन भारतीय शास्त्रीय संगीत ने वैदिक मंत्रोच्चार के मधुर पैटर्न के अनुरूप एक समान शैली का अनुसरण किया, जिसकी शुरुआत ऋग्वेद और सामवेद से हुई – लगभग 5,000 साल पहले लिखे गए भजनों के संग्रह। यहीं से पहले तीन स्वर विकसित हुए। शायद इसी मूल के कारण, भारतीय शास्त्रीय संगीत पारंपरिक रूप से स्वरों की ओर उन्मुख रहा है। लगभग एक हजार साल बाद, लगभग 200 ईसा पूर्व, नाट्य शास्त्र नाट्यशास्त्र पर पहला ग्रंथ बनकर उभरा, जिसमें सबसे उल्लेखनीय संगीत और वाद्ययंत्रों का सिद्धांत था।

नाट्य शास्त्र में, भरत ने वाद्ययंत्रों के वर्गीकरण पर चर्चा की, हार्मोनिक स्केल को रेखांकित किया, श्रुतियों को पिच के सबसे छोटे अंतराल के रूप में परिभाषित किया, और दो गायकों, एक पुरुष और एक महिला, और नौ से ग्यारह वाद्ययंत्रों की संगत के रूप में कुतप (समूह प्रदर्शन) की संरचना निर्धारित की। हजारों साल पहले उल्लिखित इन अवधारणाओं ने वह आधार प्रदान किया, जिस पर सभी भारतीय शास्त्रीय संगीत विकसित हुए।

मध्यकालीन

भारतीय शास्त्रीय संगीत ने 1000 ई. तक बड़ी संख्या में प्रतिपादक और श्रोताओं को आकर्षित कर लिया था, यहाँ तक कि इसने अन्य संस्कृतियों की संगीत शैलियों के साथ विशेषताओं का आदान-प्रदान भी किया। अगली शताब्दी में जब मुस्लिम प्रभाव पूरे उत्तर भारत में फैल गया, तो भारतीय संगीत परंपरा फारसी संगीत परंपरा के संपर्क में आई और हिंदुस्तानी शैली का जन्म हुआ। धीरे-धीरे दक्षिण से कर्नाटक संगीत के रूप में जाने जाने वाले संगीत से अलग होकर, हिंदुस्तानी शैली सूफी संगीतकारों और मुगल दरबारी संगीतकारों के प्रभाव में फली-फूली, जबकि इसने हिंदू सिद्धांतों को बनाए रखा।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद 16वीं शताब्दी में घरानों की अवधारणा उभरी, जिसमें वंश या प्रशिक्षुता द्वारा कलाकारों को जोड़ने और एक विशिष्ट शैली का पालन करने की प्रणाली शुरू की गई। घरानों, जो घरों के लिए शब्द से व्युत्पन्न हैं, ने क्षेत्र और शैली के आधार पर कलात्मक ज्ञान, कौशल और प्रदर्शन तकनीकों को आगे बढ़ाने की परंपरा को आगे बढ़ाया। घरानों के विकास ने कला और संगीत के सभी क्षेत्रों में समर्पण, भक्ति, तकनीक और नवाचार को बढ़ावा देने में मदद की। महाराजाओं के अधीन संगीत संरक्षण ने घरानों की प्रणाली को समर्थन दिया, क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र के नेता ने प्रदर्शन

और रचनाएँ करने का आदेश दिया। अनगिनत घराने समय के साथ अस्तित्व में आए हैं, लेकिन कई घराने पीढ़ियों से, यहाँ तक कि सदियों से भी मौजूद हैं।

आधुनिक

19वीं शताब्दी में संगीत संरक्षण में गिरावट ने नई संगीत परंपराओं और प्रथाओं के लिए रास्ता बनाया। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर जैसे प्रतिभाशाली संगीतकारों ने घरानों के बाहर रचना करना और शिक्षा देना शुरू किया, जिससे उन कलाकारों और संगीतकारों के लिए नई संभावनाएँ खुलीं, जिन्हें घराने में प्रशिक्षण लेने का अवसर नहीं मिला होगा। उसी समय अवधि के दौरान, पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने विभिन्न घरानों और शैलियों की तकनीकों और परंपराओं को समेकित करने का प्रयास किया। इसका परिणाम ढपझहिंदुस्तानी संगीत पद्धतिढधझ नामक पाठ के चार खंड थे, जिसने अन्य बातों के अलावा, आज इस्तेमाल किए जाने वाले रागों को स्थापित किया।

20वीं शताब्दी के दौरान, रिकॉर्ड किए गए संगीत और रेडियो के विकास का हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत पर भारी प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसने घरानों और संगीत परिवारों के बाहर प्रशिक्षित कलाकारों के लिए सफलता का मार्ग प्रदान किया। 1960 के दशक में, ऑल इंडिया रेडियो ने दरबारी संरक्षण के विघटन से पैदा हुए खालीपन को भरने के प्रयास में सैकड़ों कलाकारों को काम पर रखा, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण में एक उल्लेखनीय योगदान था। इस कदम ने हिंदुस्तानी संगीत को आम जनता तक पहुँचाया, जो पहले कभी नहीं हुआ था, खासकर संगीत केंद्रों से दूर ग्रामीण इलाकों में, जिससे सार्वजनिक प्रदर्शनों और रिकॉर्डिंग के लिए रास्ता बना, जिसने पिछले कई दशकों से हिंदुस्तानी कलाकारों को बनाए रखा है।

संगीत का उद्भव

भारतीय संगीत का इतिहास सबसे पुराना है, जैसा कि भारत के ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट है। प्यदि हम प्लिनी, स्ट्रैबो, मैगस्थनीज, हेरोडोटस (जो ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में रहते थे) प्रोफिरी और विभिन्न देशों के कई अन्य प्राचीन लेखकों द्वारा छोड़े गए लेखन और ऐतिहासिक विवरणों को पढ़ें, तो हम देखेंगे कि भारत की सभ्यता को उनके द्वारा कितना उच्च माना जाता था।^१

वास्तव में 1500 और 500 ईसा पूर्व के बीच, हिंदू धर्म, तत्वमीमांसा, दर्शन, विज्ञान, कला, संगीत और चिकित्सा में इतने उन्नत थे कि कोई भी अन्य राष्ट्र ज्ञान की इन शाखाओं में से किसी में भी उनका प्रतिद्वंद्वी या प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था।

किसी भी चीज के इतिहास का पता लगाने के लिए, आपको जानकारी, ऐतिहासिक तथ्य एकत्र करने होंगे और जड़ों की गहराई में जाना होगा। इतिहासकार का यह कर्तव्य है कि वह उस अतीत को न भूलने दे। उन्हें इन उपहारों को उनके स्रोतों तक वापस ले जाना चाहिए, उन्हें समय योजना में उनका उचित स्थान देना चाहिए और यह दिखाना चाहिए कि उन्होंने आने वाले युगों को कैसे प्रभावित या तैयार किया और वर्तमान भारतीय जीवन और विचार का कौन सा हिस्सा प्रत्येक जाति या पंथ का विशिष्ट योगदान है जो उस भूमि पर रहते हैं। संगीत की उत्पत्ति के बारे में जानने के लिए, मैंने

भारतीय संगीत पर साहित्य का व्यापक अध्ययन किया। किसी भी कला, विज्ञान या मानव गतिविधि के अन्य विभागों में विकास के सिद्धांत का इतने उत्साह से स्वागत नहीं किया गया है, इतनी उत्सुकता से अपनाया गया है और इतने पूरे दिल से समर्थन किया गया है, जितना कि संगीत में।

स्वर—प्रयत्नों की उत्पत्ति पशुओं की चीखों की नकल से हुई होगी, लेकिन वाद्य—यंत्रों की उत्पत्ति के बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है।¹⁶

मानव कंठ द्वारा उत्पन्न प्रथम ध्वनि संगीतमय थी। स्वर—रज्जुओं के कंपन से ध्वनि उत्पन्न हुई। संगीत का मुख्य गुण ध्वनि या श्लादश है। नाद अपरिवर्तनीय है।

ष्ठाषण और संगीत एक आदिम भाषा में एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं, जो न तो बोलती थी और न ही गाती थी, बल्कि दोनों ही कुछ थीं।¹⁷

अन्य विज्ञानों की तरह संगीत भी एक ऐसा विज्ञान है, जिसके नियम निश्चित और अपरिवर्तनीय हैं। जिस प्रकार पश्चिम और पूर्व में 22 चार होते हैं, उसी प्रकार संगीत के मूल नियम भी स्थायी हैं और सभी आयु के सभी मनुष्यों के लिए हैं। आज भी नाद को संगीत का आधार माना जाता है।

भरत ने ष्ठातोध्या विधि¹⁸ का वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने मानव शरीर को ष्ठारीरी वीणा¹⁹ के रूप में समझाया है, क्योंकि स्वर—रज्जु तारों का कार्य करते हैं। इसलिए हमारा कंठ सबसे सुंदर और मधुर वाद्य है।²⁰ हमारे वेदों में लिखा है कि जब ब्रह्मांड अस्तित्व में आया, तो ब्रह्मा ने संगीत की रचना की और इसे भगवान महादेव को उपहार स्वरूप दिया, जिन्होंने इसे देवी सरस्वती को उपहार स्वरूप दिया, जो संगीत की देवी बन गई और लोग उन्हें श्वीणा, पुस्तक धारिणी²¹ के रूप में पूजते थे। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में हुई खुदाई से प्राचीन और प्रागैतिहासिक काल में संगीत की स्थिति का पता चला है, जो उस समय संगीत की ऊंचाई को दर्शाता है। मुहरें, पवित्र तालाब, कर्तव्यों की गुड़िया, कच्चे प्रकार की बांसुरी, वीणा और वीणा जैसे संगीत वाद्ययंत्र जैसी कई मूल्यवान चीजें मिली हैं। ये वीणाएं सात स्वरों की संरचना वाले तार वाले वाद्य थे।

वेद सभी ज्ञान के सबसे बड़े मूल हैं। वे संस्कृत में लिखे गए आर्यों के मूल ग्रंथ हैं जो ज्ञान के भंडार हैं। वे उस समय के लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के हर पहलू में ज्ञान का सागर साबित होते हैं। हमें वेदों से पता चलता है कि ब्रह्मा के पुत्र श्लादश ने श्वीणा²² नामक एक तार वाले वाद्य का आविष्कार किया था जो उस समय बहुत लोकप्रिय हुआ था। वैदिक संगीत के अलावा गंधर्व संगीत भी प्रचलित था, जिसने भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक विशेष स्थान प्राप्त किया। वैदिक संगीत को औपचारिक माना जाता था क्योंकि इसमें कुछ नियमों और विधियों का पालन किया जाता था। गंधर्व नाम एक महान संगीतकार को दिया जाता था। विधिवत प्रणाली श्लाणिनी²³ के युग से पहले ही विकसित हो चुकी थी, जो लगभग 600 ईसा पूर्व रहते थे। इस पद्धति को फारसियों, यूनानियों, अरबियों और यूरोपीय लोगों ने भी अपनाया।

वैदिक काल में, श्स्वरतंत्र²⁴ के नाम से जाने जाने वाले चार स्वरों का पैमाना अस्तित्व में आया, हालांकि वैदिक संगीत का वास्तविक रूप पता नहीं चल पाया है।

ष, ग, रे, सा, नि, ध, पा, इन सात प्रसिद्ध स्वरों का विवरण, जो आज भी हमारे वर्तमान संगीत में उनके समतुल्य के साथ प्रयोग में हैं, पहली बार अथर्ववेद की मांडूकी शिक्षा में मिलता है। वहाँ स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि सामवेद के भजनों को मंच पर गाया जाता था।

नोट्स के नाम से जाना जाता है

षडज — सा

रिषभ—रे

गांधार — गा

मध्यम — मा

पंचम — पा

धैवत — धा

निशाद — नि

षडज ऋषभ गान्धारौ मध्यम पंचमस्तथा।

धैवतेश्च निषादश्च स्वरा सप्तेह सामसु □"

वैदिक युग के विशेषज्ञ गायक और गायक तीन रजिस्ट्रों के विशिष्ट नियमों और तरीकों को अच्छी तरह से जानते थे—बास, मध्यम और उच्च यानी मंद्र, मध्य और तारा। तीन प्राचीन रजिस्टर नोट्स या स्थानस्वर, उठाए गए, उठाए नहीं गए और संतुलित परिधि यानी उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का उपयोग बोलने के साथ-साथ गायन के स्वरों के तीन प्रकार के स्वरों के रूप में किया जाने लगा। लय और गति का उपयोग वैदिक मीटर, गायत्री, जगती, अनुष्टुप आदि के विभिन्न प्रकार के पैरों के अनुसार किया जाता था। समय माप या ताल भजन गीतों और विभिन्न प्रकार के सामगानों में दो अलग-अलग तरीकों से देखा जाता था जिसमें ताल और बिना ताल के होता था। हाथों से ताली बजाना समय मापने का तरीका हुआ करता था और दूसरा हाथ हिलाना या शरीर के विभिन्न अंगों को हिलाना था। इसलिए गहन अध्ययन के बाद पता चलता है कि संगीत की उत्पत्ति वैदिक काल या वेदों से हुई है।

संगीत वाद्ययंत्रों का वर्गीकरण

संगीत सिद्धांत की सबसे प्राचीन विस्तृत व्याख्या जो समय की मार झेलते हुए भी बची हुई है, वह श्वरतश् द्वारा रचित श्नाट्य शास्त्र नामक ग्रंथ में मिलती है। इस ग्रंथ का 28वां अध्याय श्रुति, स्वर, ग्राम, ताल आदि से संबंधित है। यह पुस्तक चार प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों की कहानी कहती है, जिनके नाम हैं — तत्, सुषिर, अवनध और घन वाद्य।

भारतीय संगीत वाद्ययंत्रों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हें चार श्रेणियों में रखा गया है

1. तत् वाद्यः
2. सुषिर वध्यास
3. अवनध वध्य
4. घन वाद्य

तत् वाद्य ये वे तार वाले वाद्य हैं जिनका उच्चारण मिजराब या प्लेक्ट्रम से बजाने पर स्वर उत्पन्न होते हैं। तत् वाद्य भी दो प्रकार के होते हैं तत् और अन्य वितत् वाद्य। पहली श्रेणी में सितार, तानपुरा, सरोद शामिल हैं जिन्हें उंगलियों और प्लेक्ट्रम या मिजराब की मदद से बजाया जाता है। दूसरी श्रेणी में सारंगी, बेला, इसराज आदि शामिल हैं जिन्हें धनुष की मदद से बजाया जाता है। तत् वाद्य को अंग्रेजी में कॉर्डोफोन कहा जाता है

सुषिर वाद्य ये वायु वाद्य हैं, जिन्हें मुँह से पूरी या आधी साँस से बजाया जाता है। ये पाइप जैसे वाद्य हैं। बांसुरी, नफीरी, पूंगी, शहनाई, बीन, क्लारनेट, माउथ-ऑर्गन आदि सभी इस श्रेणी में आते हैं।

अवनध वाद्य वे वाद्य जो एक छोर पर खोखले गोलाकार रूप में फैली हुई खाल से बने होते हैं, अवनध वाद्य कहलाते हैं। तबला, पखावज, नगाड़ा, डमरू, मृदंग सभी अवनध वाद्य परिवार के हैं।

घन वाद्य वे वाद्य जो हाथ या लकड़ी की छड़ी से बजाए जाते हैं, घन वाद्य कहलाते हैं। धातु की घंटियाँ, घड़ियाल, मजीरा, झांझ, करताल, जल-तरंग, काषट-तरंग, ये सभी वाद्य इस श्रेणी में सूचीबद्ध हैं।

मेरा मत है कि उपर्युक्त उपकरणों को चार श्रेणियों के बजाय केवल दो समूहों में विभाजित किया जाना चाहिए।

1. स्वर से संबंधित वाद्य यंत्र
2. ताल-लय या लय से संबंधित वाद्य यंत्र।

पहली श्रेणी में निम्नलिखित वाद्य यंत्र आते हैं , वीणा, सितार, तानपुरा, बेला, सरोद, बांसुरी शहनाई, हारमोनियम, पियानो, जल-तरंग, काश्त-तरंग आदि।

दूसरी श्रेणी में तबला, पखावज, ड्रम, ढोल, शामिल हैं। मजीरा, झांझ, करताल आदि

सितार रू इतिहास, संरचना और सांगीतिक महत्व

सितार एक तार वाला वाद्य यंत्र है, जिसकी उत्पत्ति भारतीय उपमहाद्वीप में हुई है, जिसका इस्तेमाल हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में किया जाता है। इस वाद्य यंत्र का आविष्कार 18वीं शताब्दी में हुआ था,

और यह अपने वर्तमान स्वरूप में 19वीं शताब्दी के भारत में आया। आधुनिक विद्वानों द्वारा मुगल साम्राज्य के 18वीं शताब्दी के एक व्यक्ति खुसरो खान को सितार के आविष्कारक के रूप में पहचाना जाता है। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार, उन्होंने सितार को सेतार से विकसित किया, जो अब्बासिद या सफवीद मूल का एक ईरानी वाद्य यंत्र है। भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला सितार 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक की शुरुआत में रविशंकर के कामों के माध्यम से व्यापक दुनिया में लोकप्रिय हो गया।¹⁵, 1960 के दशक के मध्य से अंत तक साइकेडेलिक संस्कृति के आगमन ने पश्चिमी लोकप्रिय संगीत में सितार के उपयोग का चलन शुरू कर दिया, जिसमें बीटल्स, रोलिंग स्टोन्स, मेटालिका और कई अन्य बैंडों के ट्रैक में यह वाद्य यंत्र शामिल हुआ।

यह सिद्धांत बनाया गया था कि सितार का आविष्कार, या बल्कि इसे विकसित करने का काम 13वीं शताब्दी के दौरान अमीर खुसरो (सी. 1253–1325) ने किया था, जो एक प्रसिद्ध सूफी आविष्कारक, कवि और ख्याल, तराना और कव्वाली के अग्रणी थे।^{16,17,18,19}, हालांकि, अमीर खुसरो की परंपरा को विद्वानों द्वारा बदनाम माना जाता है।²⁰, उन्होंने जो भी वाद्ययंत्र बजाया हो, इस अवधि से षसितार नाम का कोई रिकॉर्ड मौजूद नहीं है।²¹, कैप्टन एन. ऑगस्टस विलार्ड द्वारा 19वीं शताब्दी में किए गए एक अस्पष्ट कथन के परिणामस्वरूप प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का बाद के व्यक्ति, संभवतः खुसरो खान, जो 18वीं शताब्दी में रहते थे, के साथ गलत संबंध हो सकता है।

सितार का सबसे पहला उल्लेख 1739 ई. में मिलता है। मुहम्मद शाह रंगीला के शासनकाल के दौरान दरगाह कुली खान द्वारा लिखित पुरावका-ए-देहली में सितार का सबसे पहला संदर्भ मिलता है। इतिहासकारों द्वारा विश्लेषित मौखिक और पाठ्य साक्ष्य संकेत देते हैं कि अठारहवीं शताब्दी में मुगल दरबार के एक व्यक्ति, जिसका नाम खुसरो खान था, ने छोटे फारसी तीन-तार वाले सेटार से सितार की उत्पत्ति की थी।, मुगल साम्राज्य के उत्तरार्ध में, वाद्य यंत्र ने अपना आधुनिक आकार लेना शुरू कर दिया। गर्दन चौड़ी हो गई। कटोरा, जो लकड़ी के चिपके हुए लट्ठों से बना था, अब लौकी से बना था, जिसमें धातु के परेड्स और गर्दन पर एक हड्डी का नट था।²², मसीद खान ने सितार में दो और तार जोड़े। आधुनिक सात तार वाला सितार अलाउद्दीन खान द्वारा बनाया गया था।²³, सितार पर सहानुभूतिपूर्ण तार पहली बार उस्ताद इमदाद खान द्वारा जोड़े गए थे। सितार के लिए विशेष रूप से सबसे प्रारंभिक रचना शैली अठारहवीं शताब्दी के मध्य में उभरी, जिसका श्रेय फिरोज खान को दिया जाता है, जो खुसरो खान के बेटे या भतीजे थे।

सितार वादन में गायकी के तत्व

“जब मैं अपने सितार वादन के लिए एक शानदार संगीत रचना तैयार करने की कल्पना करता हूँ, तो मेरे मन की गहराइयों में धुनों का एक जीवंत रहस्य प्रकट होता है। सितार मेरे हाथों में नाजुक ढंग से थामे हुए है, मेरे विचारों में एक राग गूंजता है, और गीत की एक संरचित कथा मेरी आत्मा में आकार लेती है। मुखर अभिव्यक्ति की पेचीदगियां मेरी चेतना पर कब्जा कर लेती हैं, सहजता से भीतर से निकलती हैं। यह एक सचेत प्रयास नहीं बल्कि एक स्वाभाविक प्रवाह है। मंच पर, मैं इस मधुर कृति की संपूर्ण रूपरेखा की कल्पना कर सकता हूँ। गायन के लिए मेरा जुनून मेरे अस्तित्व की प्रेरक

शक्ति बन गया है। मेरा लक्ष्य अपने सितार वादन में अपनी आवाज के भावनात्मक गुणों को शामिल करना है। हालाँकि वाद्य तकनीकों और गायन की बारीक कला के बीच एक स्पष्ट अंतर है बल्कि, यह एक दिव्य उपहार है जो ख्याल गायन और मेरे संगीत के सफर को आकार देने वाले सम्मानित गायकों के साथ मेरे गहरे जुड़ाव के कारण मेरे प्रदर्शन में सहजता से समाहित हो जाता है”–

उस्ताद विलायत खान ने सितार बजाने की एक विशिष्ट और मनमोहक विधि की कल्पना की और उसका अभ्यास किया जिसे सितार पर गायन के रूप में जाना जाता है। इस दृष्टिकोण में गायन की जटिल धुनों और भावनात्मक गुणों को सितार के तारों द्वारा उत्पन्न ध्वनियों में एकीकृत करना शामिल है। दो अलग-अलग कला रूपों का यह संलयन एक आकर्षक और गहराई से चलने वाला संगीत अनुभव देता है जिसे “गायक बाज” कहा जाता है। यह विभिन्न सितार तकनीकों के माध्यम से गायन की बारीकियों को दोहराने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य गायन प्रदर्शन में निहित तरलता, अभिव्यक्ति और तात्कालिक प्रकृति को व्यक्त करना है।

निष्कर्ष

भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी अनूठी संरचना और भावाभिव्यक्ति के कारण केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, बल्कि यह जीवन, दर्शन और आध्यात्मिक साधना का प्रतीक है। स्वर और राग इसकी आत्मा हैं, जबकि ताल इसकी गति और लय को संतुलित करता है। परंपरा के स्तर पर यह गुरु-शिष्य परंपरा से पोषित होकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित होती रही है, जिसने इसकी शुद्धता और प्रामाणिकता को बनाए रखा। सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय शास्त्रीय संगीत ने न केवल धार्मिक और सामाजिक जीवन को समृद्ध किया है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान और विविधता को भी वैश्विक मंच पर स्थापित किया है। आधुनिक समय में तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के बावजूद इसका महत्व कम नहीं हुआ, नए स्वरूपों और नवाचारों के साथ यह और अधिक प्रासंगिक बन गया है। इस प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत न केवल भारत की धरोहर है, बल्कि यह मानवता की साझा सांस्कृतिक विरासत का भी एक अनमोल हिस्सा है।

संदर्भ ग्रंथ

- सितार वादन की शैलियाँ – रजनी भटनागर कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स – नई दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2006
- सितार मार्ग – श्रीपद बन्धापोध्याय, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्रथम संस्करण. 1991
- संगीत संजीवनी – लावण्य कीर्ति सिंह ‘काव्या’ कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स – नई दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2005
- संगीत निबंध संग्रह (विभिन्न विद्वानों की अमूल्य रचनाओं का संग्रह) – प्रो. हरिशचन्द्र श्रीवास्तव – संगीत सदन प्रकाशन – 8, साउथ मलाका – इलाहाबाद-प्रथम संस्करण 2005

- सनिया परम्परा की वादन शैली में सत्रह पर्दे का सितार – डॉ. जितेन्द्र मलिक – कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स प्र.सं. 2010
- संगीत कला विहार – 2008
- संगीत कला विहार – मार्च-अप्रैल – 1991
- संगीत – जनवरी 1957
- सितार वादन, प्रो. सतीश चन्द्र, – संगीत सदन प्रकाशन साउथ मलाका, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1969
- सुरीले लोगों की संगत – गजेन्द्र नारायण सिंह – कनिष्क पब्लिशर्स नई दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2008
- संगीत तराना अंक – जनवरी 1968 – लक्ष्मी नारायण गर्ग।
- सनिया परम्परा की वादन शैली में सत्रह परदे का सितार – जितेन्द्र मलिक – कनिष्क पब्लिशर्स – डिस्ट्रीब्यूटर्स – नई दिल्ली – प्रथम संस्करण – 2010
- सारंगी – डॉ. सुरेश व्रत राय – उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी – लखनऊ – प्रथम संस्करण 1982 – इलाहाबाद प्रेस – रानी मैलमाड़ी इलाहाबाद
- संगीत – अगस्त 1983 – साक्षात्कार – उस्ताद के जूतों की धूल आज भी मेरे पास मौजूद है (प्रसिद्ध सितार नवाज़ उस्ताद विलायत खाँ से प्रकाश महाडिक की प्रेरक बातचीत)
- संगीत सुदर्शन – पंजाबी पं. सुदर्शनाचार्य शास्त्री – इंडियन प्रेस लि. प्रयाग, द्वितीय संस्करण – सन् 1992